प्रथम अध्याय

लक्ष्मीनारायण मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

लक्ष्मीनारायण मिश्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

किसी भी रचना को पढ़ने या समझने से पहले उस रचनाकार के जीवन तथा उसकी परिस्थिति को जान लेना आवश्यक है, क्योंकि इमारत कितनी ऊँची है या मजबूत है यह महत्त्वपूर्ण नहीं होता। बल्कि उसकी नींव कितनी मजबूत है यह देखना आवश्यक है। रचनाकार के जीवन में आए कई प्रसंग तथा उसके परिवेश का चित्रण उसकी कृतियों में निश्चित दिखाई देता है। इसलिए उसे जानना जरूरी है। रचनाकार का जीवन तथा उसके परिवेश का परिचय पाने के लिए उन सभी कृतियों का अध्ययन करना हमे आवश्यक है जिससे उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का पता चल सकता है।

1.1 व्यक्तित्व :-

प. लक्ष्मीनारायण मिश्र जी बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न आधुनिक रचनाकारों में से एक सशक्त रचनाकार हैं। हिन्दी साहित्य में व्यक्तित्व को निम्न अर्थ में स्वीकृत किया गया है। व्यक्ति के विशेष गुण ही उसका व्यक्तित्व बनता है। जिसमें उसके सोचने, बोलने, लिखने, रहने और जीवनयापन करने के ढंग सम्मिलित हैं। इसके साथ ही शरीर के बनावट, जीवनमूल्य, आदते, मनोवृत्तियाँ, विचार आदि भी व्यक्तित्व के विशेष गुण होते हैं।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व शारीरिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों का समुच्चय है। जो किसी भी व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से अलग करता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व की जो छाप दूसरों पर पडती है, वह उसकी रचनाओं से अविभाज्य होती है।

1.1.1 जन्म -

बहुमुखी प्रतिभासंपन्न लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का जन्म सन् 1903 ई. में उत्तरप्रदेश के आजमगढ़ जिले के बस्ती नामक ग्राम में हुआ।

1.1.2 माता-पिता -

मिश्रजी के पिता पं.कमलाप्रसाद मिश्र एक उच्चकुलीन व्यक्ति माने जाते थे। इनकी माता सहोदरादेवी धर्मपरायण हिन्दू नारी थी। इनकी पौराणिक गाथाओं का प्रभाव मिश्रजी के बालमन पर हुआ और भारतीयता के प्रति मिश्रजी की अटूट आस्था बनी रही।

1.1.3 बचपन, शिक्षा -

मनुष्य की प्रतिभा का विकास होने के लिए उसे अभ्यास और शिक्षा की आवश्यकता होती है। अत: मिश्रजी के साहित्य का अध्ययन करते समय उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दिक्षा के बारे में विचार करना आवश्यक है।

मिश्रजी अपने पिता की इकलौती संतान होने के कारण उनका बाल्य-काल बहुत ही लाड-प्यार में बीता। बचपन में स्कूल दूर होने से घर पर ही शिक्षा लेते रहे। हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त करते समय मिश्र जी के सहपाठियों में पं.कमलापति त्रिपाठी, डा.जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', दुर्गादत्त तिपाठी आदि थे। सन 1928 में उन्होंने राजनीति, इतिहास और अंग्रेजी साहित्य के साथ एल.एल.बी. की शिक्षा पूर्ण की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से कानून में स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

1.1.4 साहित्य के प्रति अनुराग -

हमें किसी वस्तू अगर व्यक्ति के प्रति अनुराग है, तो हम उसके लिए दिल से काम करते हैं या अपना पूरा वक्त उसे दे देते हैं। इसीलिए किसी भी काम को पूरा करने के लिए हमारे

मन में उसके प्रति अनुराग होना चाहिए। बचपन से ही मिश्र जी को पढ़ने की ओर लगाव था। मनोविज्ञान, इतिहास, कलाशास्त्र, दर्शन ,समाजशास्त्र का अध्ययन वे करते रहे। वेद, गीता, उपनिषद, श्रीमद्भागवत, संस्कृत और भाषा के काव्यग्रंथ, पंतजलि का योग सूत्र और वात्स्यायन का कामसूत्र आदि ग्रंथों का इसपर प्रभाव है। अध्ययन और चिंतन के कारण ही भारतीय जीवन प्रणाली का रूप मिश्र जी में स्थिर हो गया है।

1.1.5 नौकरी -

स्वाभिमानी होने की वजह से उन्होंने नौकरी न कर वकालत आरंभ की।

1.1.6 वैवाहिक जीवन -

मिश्रजी का विवाह सन 1923 ई. में श्रीमती रामदुलारी देवी के साथ हुआ। वैवाहिक जीवन में उन्हें चार संतानों की प्राप्ति हुई। जिनमें चार बेटे हैं - जिनके नाम है - विश्वंभरनाथ मिश्र, हरिंद्रनाथ मिश्र, कवीन्द्रनाथ मिश्र और रविंद्रनाथ मिश्र। दुर्भाग्य की बात यह है कि छब्बीस साल की आयु में वे तीन साल बीमार पड़ गये। जीवन के यौवन काल में उनपर अनेक आघात हुये। सन 1930 में पिता की असामायिक मृत्यू, सन 1935 में अनुज की निर्मम हत्या और सन 1936 ई में धर्मपत्नी का अकाल देहावसान आदि घटनाओं के कारण उनका हृदय कमजोर बन गया तथा स्वास्थ काफी बिगड़ गया। इन आघातों का अच्छा-बुरा प्रभाव उनकी लेखनी पर पड़ा।

1.1.7 भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था -

मिश्रजी का व्यक्तित्व आधुनिक एवं प्राचीनता, भारतीय तथा विदेशी तत्वों से बना हुआ है। इस बारे में कमलेश जी लिखते है - ''भारतीयता उनका प्राण है पर रूढ़िवादिता के वे घोर शत्रू हैं। उनकी भारतीयता की अपनी मौलिक व्याख्या है। जिसमें वे अपने ढंग से युग की उस समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव मानते हैं जिनके लिए हम पाश्चात्य संस्कृति की ओर देखते

है। स्पष्टता उनका सबसे बड़ा गुण है। उनके तर्क अकाहय होते हैं और उनके पीछे पर्याप्त चिंतन और मनन की शक्ति रहती है।'' अत: भारतीय आदर्श एवं साहित्य और संस्कृति के प्रति मिश्रजी की अगाध श्रध्दा रही है। इस भारतीय संस्कृति के प्रति जनमानस की उदासीनता को देखकर उन्होंने अपने साहित्य में भारतीय दृष्टिकोण को अपनाया। भारतीय संस्कृति के वे उन्नायक रचयिता हैं। अपने साहित्य में भारतीय मान्यताओं और जीवनदर्शन को स्थापित करने का प्रयास किया है। वे भारतीय संस्कृति के प्रति पोषक रहे हैं। उन्होंने विधवा विवाह को कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। मिश्र जी ने अपनी नाट्यकला को एक नवीन रूप प्रदान किया जिसमें भारतीय गौरव के साथ युरोपीय विकसित नाट्य पद्धति का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है। मिश्र जी बौध्दिक विवेचना में सतत प्रयत्नशील रहते हुये भी भाव वैभव एवं कल्पना से पीछा न छुड़ा सके।

1.2 कृतित्व :-

हिन्दी साहित्य में मिश्रजी प्रतिभावान साहित्यकार के रूप में उभरे हैं। मिश्रजी ने इन्टर की माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करते हुए 'अशोक' नाटक की रचना की। कालेज के जीवन में भारतीय एवं विदेशी साहित्य के विविध ग्रंथों का अध्ययन किया। इस कारण उनके मस्तिष्क में भारतीय जीवन प्रणाली का वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत रूप स्थिर होने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि हमारा नवयुवक समाज पश्चिम के अन्धानुकरण में पतन की ओर जा रहा है। तभी उन्होंने 'संन्यासी' नाटक की रचना बी.ए. के शिक्षण काल में ही कर दी। युवावस्था में मिश्र जी के हृदय में राष्ट्र चेतना कितनी गहरी थी, स्वतंत्रता की कितनी उत्कट अभिलाषा थी यह 'संन्यासी' नाटक के राजनीतिक प्रसंगों से स्वयं मुखरित हो उठा है। उसके उपरान्त मिश्र जी ने 'राक्षस का मंदिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिन्दूर की होली' और 'आधी रात' आदि पाँच सामाजिक समस्या नाटक लिखे। इसी बीच उनका पुत्र और उनकी पत्नी चल बसी। इस आघात को मिश्रजी सहन न कर सके। उनके आकर्षण अनुराग और कर्म के मानी सभी स्त्रोत सुख गए। सन 1934 से

1946 तक के 12 वर्ष के लिए हिन्दी साहित्य उनकी प्रतिभा से वंचित रहा। इसके पश्चात मिश्र जी ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक तथा जीवनी-मूलक नाटक लिखे।

साहित्य सृजन की लगन विद्यार्थी काल में होने से स्फूट, मुक्तक तथा लेख के रूप में मिश्रजी की रचना प्रभा, सरस्वती और इन्दु आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी। इसी समय उन्होंने 'अंर्तजगत' नामक छायावादी काव्य की रचना की।

1.2.1 मिश्रजी के नाट्य-साहित्य का परिचय -

लक्ष्मीनारायण मिश्र वर्तमान काल के अत्यंत सफल और ख्याति प्राप्त नाटककार हैं। सर्व प्रथम समस्या नाटककार के रूप में इनकी हिन्दी नाट्य-साहित्य को महान देन है। इन्होंने सांस्कृतिक, पौराणिक समस्यात्मक एवं जीवनी-मूलक नाटकों की रचना की। आधुनिक जीवन और जगत की खरी और स्पष्ट आलोचना ही उनके नाटकों की मूल भित्ति है। उनमें न कल्पना की अतिरंजना है, न भावुकता का अनुरोध और न रोमांस का अस्वाभाविक आकर्षण । उनमें है जीवन का कटू और तीव्र सत्य, वेदना मिश्रित कठोर तथा समाज और उसकी रूढ़ियों के प्रति एक मार्मिक व्यंग्य। इनके नाटकों का स्वरुप पाश्चात्य है किंतु आत्मा भारतीय है। मिश्र जी ने पाश्चात्य नाटय कला, बुध्दिवाद और यथार्थवाद का अनुकरण करते हुए भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और परम्परा के प्रति आस्था व्यक्त की है।

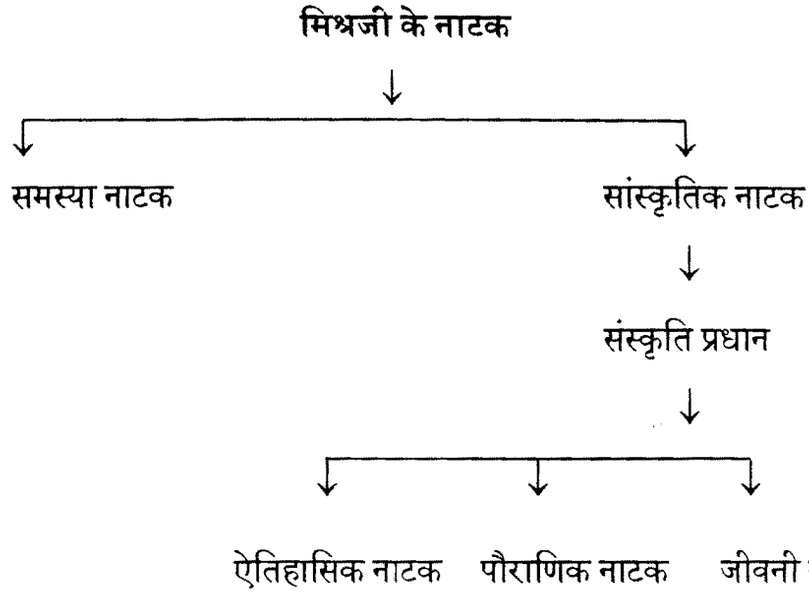

1. **समस्या नाटक** :- संन्यासी, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, सिंदूर की होली, राजयोग, आधी रात।

2. **ऐतिहासिक नाटक** :- अशोक, नारद की वीणा, गरुडध्वज, वत्सराज, दशाश्वमेघ, वितस्ता की लहरें, वैशाली में बसन्त, धरती का हृदय, वीरशंख।

3. **पौराणिक नाटक** :- चक्रव्यूह, अपराजित, चित्रकूट।

4. **जीवनी नाटक** :- कवि भारतेन्दु, मृत्युंजय, जगद्गुरु ।

1.2.2 समस्या नाटक :-

1. संन्यासी -

1927 में लिखा मिश्र जी का 'संन्यासी' प्रथम समस्या नाटक है। तीन अंकों में लिखा गया, इस नाटक की मूल समस्या काम की है। जिसे मिश्र जी ने चिरंतन नारीत्व की समस्या कहा है।

संन्यासी की मूल कथा विश्वकान्त और मालती को लेकर चलती है। मुरलीधर और किरणमयी की कथा उनके साथ जुड़ी हुअी है। संन्यासी में नाटककार ने अनेक समस्याओं का

समावेश किया हैं। प्रमुख रूप से विवाह और प्रेम की समस्या, देश के स्वातंत्र्य की समस्या तथा एशियाई संघ की स्थापना की समस्याओं को उठाया है। इस नाटक में विश्वकान्त ही संन्यासी है, जो अपने प्रेम से ऊपर उठने के लिए और उसे सामाजिक अहं का रूप देने के लिए संन्यासी का रूप ग्रहण करता है। इस नाटक में मिश्र जी ने सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण कर उनका बौद्धिक समाधान व्यक्त किया है।

2. राक्षस का मंदीर -

सन 1932 में लिखा हुआ मिश्र जी का दूसरा समस्या नाटक 'राक्षस का मंदीर' है। यह नाटक तीन अंकों में लिखा हुआ, अधिक पात्रों की संख्या में चित्रित किया है।

'राक्षस का मंदीर' का कथानक मुनीश्वर द्वारा रामलाल नामक एक धनी वकील को अपने चंगुल में फँसाकर उसकी दस लाख की संपत्ती से एक वेश्या सुधार आश्रम खोलने को चलता है। इसके साथ साथ रामलाल के लड़के रघुनाथ और अश्करी तथा रघुनाथ और ललिता के संबंधों की कथा भी चलती है।

3. मुक्ति का रहस्य -

सन 1932 में लिखा हुआ मिश्र जी का तीसरा समस्या नाटक 'मुक्ति का रहस्य' है। तीन अंकों में लिखा यह प्रेम मूलक समस्या नाटक है। इसमें विवाह प्रथा का महत्त्व स्थापित किया गया है। कथानक से संबंधित तीन प्रमुखपात्र है - उमाशंकर शर्मा, आशादेवी और डॉ.त्रिभुवन। तीनों पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं तथा उनके कार्यकलापों के परिणाम स्वरुप कथावस्तु का घटनाचक्र आगे बढ़ता है।

4. सिन्दूर की होली -

सन 1934 में मिश्र जी ने 'सिन्दूर की होली' चौथे समस्या नाटक की रचना की। इस नाटक की अधिकारीक कथा मुरारीलाल के घूस लेने, रजनीकांत के मारे जाने तथा उसकी लाश के हाथों चंद्रकला के द्वारा अपने माँग में सिन्दूर भरना, इन प्रासंगिक कथाओं के संदर्भ में मनोजशंकर और चंद्रकला, मुरारीलाल और मनोजशंकर के पिता भगवन्तसिंह और रजनीकांत, रजनीकांत और हरनन्दनसिंह आदि की कथाएँ देखी जाती है।

5. राजयोग -

सन 1934 में लिखा हुआ मिश्र जी का राजयोग यह पाँचवा समस्या नाटक है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है। रतनपुर का राजकुमार शत्रुसूदन की प्रथम रहते हुए राज्यसत्ता के बल पर चम्पा से विवाह कर लेते हैं। पाँच वर्ष के बाद भी शत्रुसदन और चम्पा का जीवन सफल नहीं हो सका।

1.2.3 ऐतिहासिक नाटक -

1. अशोक :-

'अशोक' मिश्र जी का पहला ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटक है। सन 1926 में लिखा उनकी विद्यार्थी जीवन की रचना है। इसका कथानक सम्राट अशोक के जीवनवृत्त से लेकर हैं। इन में भारतीय इतिहास की प्रख्यात कथा एवं अशोककालीन प्रमुख घटनाओं का विस्तार है। इसमें तत्कालीन ब्राह्मन - बौध्द संघर्ष को स्पष्ट रुप से प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन काल के इतिहास से अनभिज्ञ होने से नाटककार ने अशोक को धर्मनाथ के हाथ का खिलौना, कायर तथा धोखेबाज बनाकर विश्वविख्यात सम्राट के साथ अन्याय किया गया है। अन्य चरित्रों को उँचा उठाया गया है। धर्मनाथ ब्राह्मण के चित्रण में चाणक्य की नकल की है। अशोक के महान मानसिक परिवर्तन का उन्मेष इस में दिखलाया है। सामान्य गीत योजना में बद्ध यह तीन अंकी नाटक है।

2. नारद की वीणा :-

सन् 1946 में प्रकाशित 'नारद की वीणा' मिश्रजी का प्रागौतिहासिक सांस्कृतिक रचना है। इस नाटक में प्राय: चार हजार वर्षों का प्रागौतिहासिक काल, कथानक, प्रवृत्तियाँ और समस्याओं का नियोजन हुआ है। यह नाटक आर्य-आर्येतर के संघर्ष और समन्वय पर आधारित है। इसमें आर्य सभ्यता को हीन एवं अनार्ध सभ्यता को श्रेष्ठ बताया है। मिश्रजी ने बताया है कि पश्चिम की ओर से भारत में आनेवाले श्वेत यायावर आर्यों ने शारीरिक शक्ति के बल पर यहाँ के स्थायिक निवासियों पर विजय तो प्राप्त की किन्तु सभ्यता और संस्कृति में वे अनार्य सभ्यता से पराजित हो गए और उन्हें भी अनार्य की संस्कृति अपनानी पड़ी। वे निवासी आर्यों के गुरु थे। आर्य-अनार्य संस्कृति के समन्वय से मिश्रजी ने सिद्ध किया है कि हमारी वर्तमान संस्कृति वास्तव में यहाँ के मूल निवासियों और आर्यों की सभ्यता व संस्कृति का ही समन्वित रुप है।

'नारद की वीणा' का कथानक तीन अंकों में एवं गंभीर वर्णन शैली में लिखा गया है। इस नाटक कपर राहुल सांकृत्यायन की अनुपम प्रस्तुत 'वोल्गा से गंगा' का प्रभाव है। इसकी रचना पुराणों के आधार पर कल्पनामिश्रित है।

3. गरुडध्वज :-

सन 1946 में प्रकाशित यह संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। इसमें पहली शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक की सामाजिक स्थिति का सजीव अंकन है। भारतीय संस्कृति के निर्माता कालिदास और विक्रमादित्य की श्री एवं शक्ति का अभिव्यक्ति इस नाटक में हुई है। शृंग वंश के ऐतिहासिक वातावरण तथा सांस्कृतिक राजनैतिक जीवन का परिचय इसमें मिलता है। इसमें शृंग वंश का आरंभ एवं समाप्ति और मालव साम्राज्य की प्रतिष्ठा का चित्रण है। नाटककार ने भागवत धर्म का पतन बताते हुए सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय उत्कर्ष को व्यक्त किया है। अभिनेयता की दृष्टि से असफल तथा ऐतिहासिक दृष्टि से यह सफल नाटक है। इसमें भारत की गौरवमयी

प्राचीन संस्कृति राष्ट्रीय उत्कर्ष और एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण का स्वर मुखरित हुआ है।

आधुनिक यथार्थवादी शैली में लिखा गया यह तीन अंकी नाटक है। गीतों की रचना नहीं है। इस में नारी समस्या एवं धार्मिक मतवाद को प्रस्तुत किया गया है। नारी के प्रति मिश्रजी की सहानुभूति व्यक्त हुई है।

4. वत्सराज :-

सन 1949 में लिखा हुआ यह मिश्रजी का संस्कृतिप्रधान - ऐतिहासिक रचना है। नाटक में रूप और कला के धनी वत्सराज उदयन का चरित्र मिश्रजी ने 'स्वप्न वासवदत्ता', 'प्रतिज्ञा यौगंधरायण' और 'कथासरिता सागर' के आधार पर किया है। उदयन की कथा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के इन आदर्श का स्वरूप स्पष्ट होता है। यूनानी सभ्यता तथा बौद्ध धर्म की आलोचना कर भारतीय जीवनदर्शन को सर्वोत्तम माना है। वत्सराज के चरित्र में तप और भोग का समन्वित रुप स्पष्ट करते हुए भारतीय संस्कृति का उज्वल एवं आदर्श रुप निखर आया है। उदयन के राजा तथा विरागी रुप का परिचय इसमें मिलता है। पात्रों के चारित्रिक विकास एवं अभिनेयता की दृष्टि से सफल नाटक है।

5. दशाश्वमेघ :-

सन 1950 में प्रकाशित यह संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक है। 3-4 शताब्दी के भारशिवनागों के इतिहास से सम्बंधित है। इस वंश में जन्में वीरसेन नामक निर्भिक, साहसी एवं योद्धा के शौर्य की कहानी इसमें है। वीरसेन कुषाण साम्राज्य को चुनौती देकर देश स्वतंत्र का स्वप्न देखता है। नाटक में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक वातावरण का पर्याप्त रूप में अंकन हुआ है। काशी का दशाश्वमेघ घाट वीरसेन की गौरवगाथा है। इसमें पात्रों का अधिकता एवं गीतों का अभाव है। ऐतिहासिक नाटक के रुप में सफल नाटक है।

6. वितस्ता की लहरें :-

सन 1952 में प्रकाशित यह सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा का नाटक है। इतिहास प्रसिध्द सिकंदर और पुरु के युध्द की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए मिश्र जी ने तत्त्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का चित्रण किया है। इस नाटक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुँचना, चोरी से वितस्ता पार करना और वीर पुरु के साथ सिकंदर का युद्ध है, जिसके माध्यम से प्राचीन आत्मगौरव, पराक्रम एवं संस्कृति का परिचय मिलता है। यवन संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय दिखलायी है। वितस्ता की तट पर दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों का संघर्ष का वर्णन किया है। अभिनेयता की दृष्टि से सफल नाटक है।

7. वैशाली में बसन्त :-

सन 1955 में सांस्कृतिक ऐतिहासिक क्रम में इस नाटक की निर्मिती हुई। इसमें इतिहास प्रसिद्ध वैशाली की नगर वधू का नया रुप ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया गया है। नाटक में अम्ब्रपाली-अजातशत्रु कालीन भारत की सभी परिस्थितियों का वर्णन मिलता है। इसमें भी बौद्ध धर्म की आलोचना कर भारतीय संस्कृति के उज्वल रुप को प्रस्तुत किया है। दास-प्रथा, गौतम बुद्ध तथा उनके संघो के घातक प्रभाव आदि नाटक में व्यक्त हुए हैं। भारतीय शैली का प्रयोग हुआ है।

8. धरती का हृदय :-

सन 1962 में प्रकाशित सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा का यह नाटक है। चंद्रगुप्त की माता के उद्धार एवं यवनों से मातृभूमि के उद्धार की कहानी पर इस नाटक की रचना की है। चाणक्य के ऐतिहासिक स्वरूप को तथा ऐतिहासिक घटनाओं को नये ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रासंगिक कथा के साथ सूच्य कथाएँ अधिक हैं। बौद्ध धर्म की आलोचना राष्ट्रीयता की भावना और जातीय गौरव की अभिव्यक्ति हुई है।

9. वीर शंख :-

मिश्र जी का सन 1967 में प्रकाशित सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा का अंतिम नाटक 'वीर शंख' है। इस नाटक में हूणों की उस संहार लीला का वर्णन है, जिसमें वक्षु तथा उत्तर-पश्चिम समुद्र से लेकर नर्मदा के तट तक राजवंश उखड़ गए, नगर-महानगर, ग्राम-जनपद सब से सब मिट गए। चाणक्य और पुष्यमित्र की कोटि के अवन्ती के आचार्य कालमणि को प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति का गौरवशाली स्वरूप इस नाटक में मिलता है। गीत योजना इस नाटक में भी की गयी है।

इस तरह नाटककार ने अपने संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटको में धर्म, दर्शन और संस्कृति का वर्णन किया है। इनमें मौर्य, गुप्त तथा शृंग वंश के इतिहास की विश्रृंखलित कड़ियों को मिलाया गया है। ये रचनायें भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक पक्ष के मूलभूत तत्वों को बड़ी सरलताएँ एवं सजीवता से प्रस्तुत करते है।

1.2.4 पौराणिक नाटक :-

1. चक्रव्यूह :-

सन 1953 में छपा हुआ यह सांस्कृतिक पौराणिक नाटक है। महाभारत के पौराणिक आख्यान अंश का चित्रण नाटक में है। तत्कालीन संस्कृति की झलक इसमें मिलती है। द्रोणाचार्य ने पांडव पक्ष के किसी वीर को नष्ट करने के लिए चक्रव्यूह का निर्माण किया और अभिमन्यू ने अपने पराक्रम से उसका भेदन किया। मिश्र जी ने पौराणिक कथानक को मनोवैज्ञानिक रुप दे दिया है। नाटक में दृश्य परिवर्तन तथा गीतों की योजना की गयी है। पौराणिक रुप में पात्रों को महत्त्व दिया गया है।

2. अपराजित :-

सन 1961 में प्रकाशित यह सांस्कृतिक पौराणिक परम्परा का नाटक है। यह कथा भी महाभारत पर आधारित है। द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा की वीरता का प्रदर्शन सफलतापूर्वक किया है। महाभारत के अछूते रहस्यों का उद्‌घाटन किया गया है। नाटक में पांडवों का छल, कपट एवं अन्यायपूर्ण शास्त्र विरुध्द चरित्र एवं कौरवों का न्यायपूर्ण, शास्त्र सम्मत चरित्र पक्ष उभारा है। नाटक का वातावरण पांडवों के विरुद्ध है, जो काल्पनिक है।

3. चित्रकूट :-

सन1963 में प्रकाशित सांस्कृतिक पौराणिक नाटक है। इसका कथानक वाल्मीकि की 'रामायण' और तुलसी के 'मानस' के अयोध्याकांड का है। भरत के ननिहाल से अयोध्या लौंटने से राम-भरत मिलन प्रसंग को लिया गया है। नाटक में मातृ-प्रेम का सफल अंकन हुआ है। नाटक की भूमिका में मिश्र जी ने लिखा है - ''इस देश में जन्म लेकर जो कवि इस कथा के किसी अंश पर कवि-कर्म न करे तो वह कभी ऋण नहीं हो सकता।' शायद इसलिए मिश्रजी ने यह रचना की होगी। त्रेतायुगीन वातावरण की झलक नाटक में मिलती है। नाटक में लक्ष्मण-जानकी के संवादों में खुलकर मृग मांस खाने, उसकी भेद से दीपक जलाने और उससे ही जानकी द्वारा केश-विन्यास करने के प्रसंगों का वर्णन किया है जिसके कारण लोक-विश्वास एवं लोक निष्ठा को धक्का लगता है। नाटक में दृश्य परिवर्तन तथा गीतयोजना नहीं है।

1.2.5 जीवनी नाटक :-

1. कवि भारतेन्दु :-

सन 1955 में प्रकाशित मिश्रजी का यह प्रथम संस्कृति प्रधान जीवनी नाटक है। यह नाटक भारतेन्दु हरिश्चंद्र के जीवन चरित्र पर आधारित है। भारतेन्दु के चरित्र से मिश्र जी आकर्षित

हुये, तभी तो यह रचना लिख पाये। इस नाटक में कवि भारतेन्दु की रईसी वृत्तियों की चर्चा की गयी है। नाटक का कथानक शृंखलाबद्ध नहीं है। तीन अंकों में लिखा गया है। दृश्य परिवर्तन का विधान नहीं किया है।

2. मृत्युंजय :-

यह संस्कृति प्रधान नाटक है। यह नाटक सन 1958 में प्रकाशित हुआ। इसका कथानक गांधीजी की जीवनी के आधार पर है। नाटक में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनन्य समर्थक तथा लोकनायक के रुप में गांधीजी को प्रस्तुत किया गया है। गांधी विचारधारा की अभिव्यक्ति नाटक में हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की हिन्दुस्थानी भाषा का स्वरुप नाटक में मिलता है। तीन अंक में नाटक लिखा गया है। दृश्य परिवर्तन की योजना नहीं है।

3. जगद्गुरु :-

मिश्रजी का यह अंतिम संस्कृति प्रधान जीवनी नाटक है। सन 1958 में छपा हुआ है। यह नाटक भगवान शंकर के जीवन चरित्र पर आधारित है। यह आदि शंकराचार्य के गौरवमय व्यक्तित्त्व एवं उनके महान कार्यों की प्रेरणा से यह नाटक लिखा गया है। नाटक में आठवी शती की भारत के तत्त्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। शंकर के महान व्यक्तित्त्व को स्पष्ट किया है। नाटक में सूच्य घटनाओं की अधिकता है। दृश्य परिवर्तन योजना नहीं है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि लक्ष्मीनारायण मिश्र आधुनिक युग के यथार्थवादी और प्रगतिशील नाटककार है। उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट श्रध्दा होने के कारण उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति की प्रधानता है। उन पर पाश्चात्य साहित्य का भी प्रभाव है। फिर भी

उनकी आत्मा सदैव भारतीय रही है। इसकी अभिव्यक्ति हमें उनके अनेक नाटकों में मिलती है। मिश्रजी प्रचंड प्रतिभा के धनी है। उन्होंने अपने नाटकों में बौध्दिकता का प्रतिपादन किया हैं। मिश्रजी ने अपने नाटकों में पौरात्य एवं पाश्चात्य नाट्यकलाओं की मान्यता सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया है।

मिश्र जी के नाटक आदर्शवादी है। उन्होंने समस्याप्रधान, ऐतिहासिक, पौराणिक एवं जीवनी नाटकों की रचना की। अपने समस्या नाटकों में उन्होंने आज के युग की प्रमुख समस्याएँ - नारी समस्या, विवाह समस्या, प्रेम समस्या आदि को चित्रित किया है। अपने ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों में उस जमाने के पराक्रमी राजाओं के आदर्श को चित्रित किया है। जीवनी परक नाटकों में उन्होंने भारतेंदु, गांधीजी आदि महान व्यक्तियों का चरित्रगान किया है। उनके नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ हैं - संस्कृति, दार्शनिकता, सामाजिकता, बौध्दिकता, आदर्शवाद आदि।